INDEX

S. No		Page No
1	माध्यस्थम् तथा सुलह अधिनियम 1996 के लक्षण	1-5
2.	माध्यस्थम्	6-7
3.	अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम	7-10
4.	माध्यस्थम के प्रकार	10-12
5.	सांविधिक माध्यस्थम	12-15
6.	पंचों की नियुक्ति को चुनौती के आधार	15-18
7.	मध्यस्थ की नियुक्ति को चुनौती की प्रक्रिया	18-20
8.	एक मध्यस्थ का आदेश कब समाप्त होता है	20-22
9.	माध्यस्थ का प्रतिस्थापन	22-24
10.	विदेशी पंचाट का अर्थ	24-26
11.	सुलह कार्यवाही का अर्थ	26-32
12.	लोक अदालत का संगठन	32-35
13.	निर्धन को निःशुल्क कानूनी सहायता	35-39
14.	दाम्पत्य विवाद में समझौता	39-43
15.	औद्योगिक विवाद 1947 के अन्तर्गत समझौता	43-50

UNITED SECULAR SOCIETY

मध्यस्थम तथा सुलह अधिनियम 1996 के प्रमुख लक्षण

1. विस्तृत विधायन → यह अधिनियम एक विस्तृत अधिनियम है। इसके द्वारा माध्यस्थम विनियमों को समेकित किया गया है तथा उन्हें संशोधित भी किया गया है। इस अधिनियम के पीछे मूल उद्देश्य यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, प्रादेशिक विवादों को सुलझाने में माध्यस्थम के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाये। इसमें कुल 86 धाराऐं हैं जो चार भागों में विभक्त हैं। भाग I सामान्य प्रावधानों से संबंधित है। न्यूयार्क तथा जिनेवा कनवेन्शन भाग II के अन्तर्गत विदेशी पंचाट के प्रवर्तन से संबंधित प्रावधान है तथा भाग IV में कतिपय पूरक प्रावधानों का उल्लेख है। जिनके अन्तर्गत उच्च न्यायालय को यह शक्ति प्रदान की गई है कि वे माध्यस्थम से सम्बन्धित ऐसे नियम बना सकते हैं जो अधिनियम से असंगत न हों। उक्त चार भागों के अतिरिक्त अधिनियम में तीन अनुसूचियाँ भी संलग्न हैं।

2. स्पष्ट विधायन → पुराने माध्यस्थम अधिनियम 1940 में अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम सम्बन्धी कोई प्रावधान नहीं था वह सिर्फ घरेलू माध्यस्थम तक ही सीमित था इस विधि को अधिक स्पष्ट किया गया है। इस अधिनियम के द्वारा

UNITED SECULAR SOCIETY

Session 2015-16

मध्यस्थ न्यायाधिकरण की परिकल्पना की गई तथा सांविधिक मध्यस्थ को न्यायाधिकरण का दर्जा प्रदान किया गया है। इस अधिनियम के द्वारा विदेशी तथा अन्तर्राष्ट्रीय मध्यस्थ के चुनाव सम्बन्धी विस्तृत प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है।

3. सुलह प्रावधान → इस अधिनियम के द्वारा प्रथम बार सुलह की प्रक्रिया को मान्यता प्रदान की गई। इस अधिनियम के द्वारा सुलह की कार्यवाही को अन्य कार्यवाही से अलग पृथक बनाया गया। जैसा की इस अधिनियम के शीर्षक से स्पष्ट है, इसमें मध्यस्थम् के अलावा सुलह को भी वाणिज्यिक विवादों के निपटारे के साधन के रूप में विधिक मान्यता प्रदान की गई है जिसे पूर्ववर्ती विधि में विधिक मान्यता प्राप्त नहीं थी। केवल इतना ही नहीं अधिनियम में सुलह को वही स्थान प्राप्त है, जो कि मध्यस्थम् को अर्थात् सुलह द्वारा समझौते से किये गये निर्णयों की मान्यता प्राप्त नहीं थी जैसी की मध्यस्थम द्वारा दी गयी पंचाट की तथा इसका न्यायालयीन डिक्री की भांति प्रवर्तन किया गया है। इस अधिनियम के अधीन देशीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय दोनों ही प्रकार के विवाद सुलह द्वारा निपटाये जा सकते हैं। तात्पर्य है कि सुलह व मध्यस्थम में मुख्य अंतर यह है कि सुलहकार विवादी पक्षकारों को अपने मतभेद या विवाद आपसी समझौते से निपटा लेने में केवल उत्प्रेरक एवं सहायक की भूमिका निभाता है।

4. न्यायालय की शक्ति को सीमित किया जाना → इस अधिनियम के द्वारा न्यायालय की शक्तियों को सीमित किया गया है। अधिनियम में इस सम्बन्ध में उल्लेख किया गया है कि माध्यस्थम कार्यवाही पर न्यायिक अधिकरण हस्तक्षेप नहीं करेगा। इस अधिनियम के अनुसार भाग एक के प्रावधानों के अधीन माध्यस्थम पचाट जारी होगा।

5. माध्यस्थम के लिए विस्तृत प्रक्रिया → अधिनियम के भाग 5 में माध्यस्थम सम्बन्धी विस्तृत प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है। इसके द्वारा प्रथम बार पक्षकारों के बीच समानता रखी गई है तथा पक्षकारों को समान एवं पूर्ण अवसर देने सम्बन्धी प्रावधान रखे गये हैं। माध्यस्थम अधिकरण को यह स्वतन्त्रता दी गई है कि वे सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के प्रावधानों को अपना सके।

6. न्यायालय के अधिकारों का उल्लेख → इस अधिनियम में न्यायालय के हस्तक्षेप की सीमा को प्रर्याप्त से उल्लेखित किया है। अधिनियम में उल्लेखित किया गया है कि न्यायालय धारा 5 के अतिरिक्त अन्य प्रावधानों के साथ हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। यह अधिनियम कुछ विशिष्ट मामलों में ही न्यायालय के हस्तक्षेप की अनुमति देता है।

7. माध्यस्थम के अधिकारों में वृद्धि → इस अधिनियम के प्रावधानों के द्वारा माध्यस्थम को विस्तृत शक्ति दी गई है।

UNITED SECULAR SOCIETY

1. निपटारा करार (Settlement Agreement) ⇒ धारा 73 के अनुसार जब सुलहकर्ता को यह दिखाई देता है कि एक निपटारे के आवश्यक तत्व विद्यमान हैं जो पक्षों के लिए स्वीकार करने योग्य है तब वह सम्भव निपटारा की शर्तों को पक्षों को सूचित करेगा और उनके अवलोकन के लिए पक्षकारों को पेश करेगा पक्षकारों के अवलोकनों को प्राप्त करने के पश्चात सुलहकर्ता, ऐसे अवलोकनों के प्रकाश में एक सम्भव निपटारा शर्तों को पुनः पक्षों को सूचित कर सकेगा

2. यदि पक्षकार गण विवाद के एक निपटारे पर करार करते हैं तो वे लिखित निपटारा करार की रचना कर सकते हैं और उस पर हस्ताक्षर कर सकते हैं यदि सुलहकर्ता द्वारा निवेदन किया जाता है तो सुलहकर्ता निपटारा करार को आरेखित कर सकते हैं या आरेखित करने में सहायता कर सकते हैं

3. जब पक्षकार गण निपटारा पर हस्ताक्षर कर देते हैं तब यह क्रमशः उनके अधीन दावा करने वाले पक्षकारों और व्यक्तियों पर बाध्यकारी और अन्तिम होगा।

4. सुलहकर्ता निपटारा करार को प्रमाणित करेगा और प्रत्येक पक्षकार को उसकी एक प्रतिलिपि देगा।

UNITED SECULAR SOCIETY

वह अन्तरिम आदेश भी जारी कर सकता है। माध्यस्थ को किसी पक्षकार से उचित कार्यवाही के तहत प्रतिभूति लेने का भी अधिकार है।

8. अपीलीय प्रावधान → इस अधिनियम में माध्यस्थम पंचाट के विरुद्ध अपील का कोई प्रावधान नहीं है। अतः मध्यस्थ - मध्यस्थों द्वारा दिया गया पंचाट निर्णय पक्षकारों के लिए अंतिम व बाध्यकारी होगा। तथापि अधिनियम की धारा 34 में वर्णित कतिपय आधारों पर व्यथित पक्षकार पंचाट को अपास्त करने हेतु न्यायालय में आवेदन कर सकता है। पूर्ववर्ती अधिनियम के पंचाट की सम्पुष्टि न्यायालय डिक्री द्वारा हुए बिना उसे प्रवर्तित नहीं कराया जा सकता इस हेतु पक्षकारों को न्यायालय में आवेदन करना पड़ता है।

9. अन्तरिम आदेश → सन् 1996 के माध्यस्थम एवं सुलह अधिनियम का एक प्रमुख लक्षण है कि इसमे माध्यस्थों या माध्यस्थम् अधिकरण को विवाद की विषय वस्तु से सम्बन्धित अन्तरिम आदेश पारित करने की शक्ति प्रदान की गयी। यदि इसके लिए पक्षकारों ने मांग की हो। पुरानी माध्यस्थम विधि में अंतरिम आदेश जारी करने सम्बंधी शक्ति का प्रावधान नहीं था यथापि माध्यस्थम या माध्यस्थम अधिकरण अंतरिम पंचाट निर्धारित कर सकता है।

UNITED SECULAR SOCIETY

निम्नलिखित को परिभाषित कीजिए?

1. माध्यस्थम् (Arbitration) ⇒ धारा 2(1)(a) के अनुसार माध्यस्थम् से अभिप्रेत है। कोई भी माध्यस्थम् चाहे स्थाई माध्यस्थम् संस्थां द्वारा प्रायोजित किया जाये या न किया जाये। इस परिभाषा में वे व्यक्ति भी शामिल हैं जो व्यक्तिगत पक्षकारों के स्वैच्छिक करार पर आधारित हों या विधि के प्रावधानों के फलस्वरूप अस्तित्व में आये। हो पर परिभाषा यह नहीं बताती है कि कौन माध्यस्थम् है। बल्कि यह उल्लेखित करती है कि कौन कौन माध्यस्थम् है। पुराने अधिनियम में भी माध्यस्थम् की परिभाषा नहीं दी गई है।

सामान्य भाषा में माध्यस्थम् का अर्थ पक्षकारों के पारस्परिक समझ अथवा करार द्वारा विवादों या मतभेदों के अनु.हल या समझौते से है। जिसके द्वारा पक्षकारों के अधिकारों तथा दायित्वों का निर्धारण हुआ हो।

2. माध्यस्थम् करार (Arbitration Agreement) → धारा 2(1)(b) में उल्लेखित किया गया है कि माध्यस्थम् करार से अभिप्राय धारा 7 में निर्दिष्ट किये गये एक करार से है। इस प्रकार यह धारा माध्यस्थम् करार को परिभाषित नहीं करती है। बल्कि यह उल्लेखित करती है कि माध्यस्थम् करार है माध्यस्थम् को उन सभी या कुछ विवादों को माध्यस्थम् द्वारा निपटान करने के लिये पक्षकारों द्वारा एक

करार से अभिप्रेत है, जो उद्भूत हो गये है या उद्भूत हो सकते है।
माध्यस्थम करार व्यापारिक संविदा के अन्तर्गत एक प्राविधान के रूप में हो सकता है या दोनों पक्षकारों के द्वारा माध्यस्थम का आशय रखने के कारण आपसी पत्र व्यवहार के, टैलेक्स, टैलीफोन, या अन्य संचार माध्यमों के द्वारा जहाँ बातचीत का रिकार्ड मिल सके, तो भी माध्यस्थम करार मान लिया जाता है। माध्यस्थम करार का कोई प्रारूप नहीं निश्चित है परन्तु यह लिखित होना चाहिए किन्तु किसी रजिस्टर्ड सोसायटी के सविधान में माध्यस्थम का उल्लेख माध्यस्थम करार नहीं माना गया।

3. माध्यस्थम पंचाट (Arbitral Award) धारा 2 (1) (c) के अनुसार "माध्यस्थम पंचाट" के अंतर्गत एक अन्तरिम पंचाट सम्मिलित है।
यह धारा "माध्यस्थम पंचाट" को परिभाषित नहीं करती बल्कि यह बताती है कि माध्यस्थम पंचाट में अंतरिम पंचाट भी शामिल है इस प्रकार माध्यस्थम पंचाट के दो भाग होते है।

1. अन्तरिम पंचाट
2. अन्तिम पंचाट

सामान्य तौर पर माध्यम पंचाट, पक्षकारों द्वारा चयनित न्यायाधिकरण के द्वारा अन्तिम या अन्तिम निर्णय या अविनिश्चय होता है जो संविदा से पैदा है

UNITED SECULAR SOCIETY

Session 2015-16

भारत संघ बनाम जे० एन० मित्रा AIR 1970 SC 753 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अन्तिम पंचाट पर पहुँचने से पहले मध्यस्थ से यह अपेक्षा की जाती है कि उसने दावों तथा प्रतिदावों पर औचित्यपूर्ण रूप से विचार किया हो।

4. अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम → धारा 2(1)(f) के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक मध्यस्थम विधिक भागीदारी से उत्पन्न होने वाले विवादों से सम्बन्धित एक माध्यस्थम है चाहे भारत की लागू किसी विधि के अधीन वाणिज्यिक के समान, संविदात्मक अथवा न समझा जाये और जहाँ पक्षकारों में कम से कम एक हो —

1. एक व्यक्ति जो भारत से भिन्न किसी देश का अभ्यासिक तौर पर निवासी हो, या नागरिक हो।
2. एक निगमित निकाय जिसे भारत से भिन्न किसी दूसरे देश से सम्मिलित किया जाता है या
3. एक कम्पनी या एक संघ या उन व्यक्तियों का निकाय जिसका केन्द्रीय प्रबन्धन और नियंत्रण भारत से भिन्न किसी देश से किया जाता हो
4. एक विदेशी सरकार।

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम एक ऐसा माध्यस्थम है जो विधिक सम्बन्धों से उत्पन्न होता है। इस विधिक संबंध का निर्माण संविदा से होता है यह आवश्यक नहीं है परन्तु इसके लिए एक पक्षकार का विदेशी होना आवश्यक है।

5. विधिक प्रतिनिधि (Legal Representative) धारा 2 (11) के अनुसार "विधिक प्रतिनिधि" से अभिप्राय जो कानूनी तौर से मृतक व्यक्ति की सम्पदा का प्रतिनिधित्व करता है और जहां एक पक्षकार एक प्रतिनिधि की हैसियत या प्रकृति में कार्य करता है, वहां वह व्यक्ति जिसमें सम्पदा इस प्रकार के व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर न्यायगत हो जाती है।

परिभाषा के अनुसार निम्नलिखित व्यक्ति प्रतिनिधि की परिभाषा में आते हैं।

1. ऐसा व्यक्ति जो मृतक की सम्पदा का प्रतिनिधित्व करता है।
2. ऐसा व्यक्ति जो मृतक की सम्पदा में हस्तक्षेप करता है।
3. ऐसे विधिक प्रतिनिधि का प्रतिनिधि।

6. न्यायालय (Court) धारा 2(4) के अनुसार "न्यायालय" एक जिले में आरम्भिक अधिकारिता से अभिप्रेत वह प्रधान न्यायालय है और इसमें समाविष्ट है उच्च न्यायालय जिसे अपने सामान्य आरम्भिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में माध्यस्थम की विषय वस्तु सम्बन्धी प्रश्नों को विनिश्चित करने की अधिकारिता है, यदि वह किसी वाद की विषय वस्तु होती, परन्तु न्यायालय के परिप्रेक्ष्य में प्रधान न्यायालय से भिन्न श्रेणी के न्यायालय या लघुवाद न्यायालय सम्मिलित नहीं है।

Session 2015-16

परिभाषा के अनुसार न्यायालय के निम्नलिखित गुण होने चाहिए।

1. न्यायालय एक दीवानी न्यायालय होना चाहिए
2. माध्यस्थम के लिये निर्दिष्ट की गई विषय वस्तु के सम्बन्ध में वाद की सुनवाई का क्षेत्राधिकार में उत्पन्न हुई हो यदि पक्षकार अपनी सीमा में रहते हैं या विवाद ग्रस्त सम्पत्ति उनके स्थानीय क्षेत्राधिकार में है तो उसी न्यायालय का क्षेत्राधिकार माना जायेगा।

परिभाषा के अनुसार मुख्य दीवानी स्तर के न्यायालय से भिन्न न्यायालय तथा लघुवाद न्यायालय नहीं माना जायेगा जिला न्यायालय प्रमुख दीवानी न्यायालय होता है। इस प्रकार जिला न्यायालय तथा उसके ऊपर के न्यायालय इस धारा में न्यायालय माने जाते हैं।

माध्यस्थम के प्रकार (Kinds of Arbitration)

1. तदर्थ माध्यस्थम (Ad hoc Arbitration) → इस प्रकार के माध्यस्थम का प्रयोग उस समय किया जाता है। जब कोई विवाद कारोबार से सम्बन्धित व्यवहार से उत्पन्न होता है। जिसे पक्षकार आपसी बातचीत या सुलह द्वारा नहीं सुलझा सकते हैं। तदर्थ माध्यस्थम किसी विशिष्ट एक विवाद के लिए ही प्रयुक्त किया जाता है।
2. संविदात्मक माध्यस्थम (Contractual Arbitration)

→ वर्तमान में निरंतर बढ़ते हुए व्यापार तथा औद्योगिक कारोबार और आर्थिक प्रगति के परिणाम स्वरूप वाणिज्यिक सव्यवहारों में अत्यधिक वृद्धि हुई है अतः इन कार्य में रत पक्षकारों में आपसी मनमुटाव या विवाद उत्पन्न होना स्वभाविक ही है। इन विवादों को शीघ्र निपटाने के उद्देश्य से पक्षकार बहुधा अपनी वाणिज्यिक संविदाओं में एक माध्यस्थम उपवाक्य (Arbitration clause) अवश्य डाल देते हैं ताकि उनके विद्यमान व भावी विवाद न्यायालय की शरण लिये बिना उनके द्वारा नियुक्त माध्यस्थों की माध्यस्थता से निपटा लिये जा सकें। इस प्रकार के माध्यस्थम को संविदात्मक माध्यस्थम (Contractual Arbitration) कहा जाता है।

3. संस्थागत माध्यस्थम (Institutional Arbitration) - जब पक्षकार अग्रिम रूप से इस बात की सहमति प्रस्तुत करते हैं कि उनके बीच व्यापारिक व वाणिज्यिक कारोबार में उत्पन्न होने वाले मनमुटावों को निपटाने के लिए वे किसी ऐसी नामित माध्यस्थम संस्था को निर्दिष्ट करेंगे, तो ऐसे माध्यस्थम को संस्थागत माध्यस्थम कहा जायेगा। इन माध्यस्थम संस्थाओं के अपने स्वयं के प्रकाशित नियम होते हैं तथा यह पक्षकारों की सहमति से अपने विशेषज्ञों की पैनल में से माध्यस्थ / माध्यस्थों की नियुक्ति करते हैं।

4. सांविधिक माध्यस्थम (Statutory Arbitration) कुछ ऐसे क्षेत्र होते है। जिनमे देश की स्थानीय विधि के अधीन पक्षकारों पर माध्यस्थम सांविधिक रूप से अधिरोपित किया जाता है। इन्हे माध्यस्थम के निर्णय का पालन करना आवश्यक होता है सांविधिक माध्यस्थम में ऊपर वर्णित तीन प्रकार का प्रश्न नहीं उठता जबकि तदर्थ माध्यस्थम, संविदात्मक माध्यस्थम तथा संस्थागत माध्यस्थम पक्षकारों की सहमति पर आधारित होते है। दूसरे सांविधिक माध्यस्थम पक्षकारों के लिए अन्य किसी विधि की भांति अनिवार्य एवं बाध्यकारी होता है। जबकि अन्य माध्यस्थमों का स्वरूप स्वैच्छिक होता है।

माध्यस्थम कार्यवाही में न्यायालय द्वारा क्या अन्तरिम उपाय किये जा सकते है।

धारा 9, आदर्श विधि के अनुच्छेद 9 के अनुरूप है। तथा पुरानी माध्यस्थम विधि 1940 की धारा 41 (ख) से मिलती जुलती है। धारा 9 न्यायालय को यह अधिकार देती है। कि वह माध्यस्थम कार्यवाही के दौरान परन्तु धारा 36 के अनुसार माध्यस्थम पंचाट के लागू हो जाने से पूर्व या माध्यस्थम कार्यवाही के दौरान, या माध्यस्थम पंचाट किये जाने के पश्चात परन्तु माध्यस्थम पंचाट लागू किये जाने के पहले किसी भी समय न्यायालय से निम्नलिखित उपाय करने

UNITED SECULAR SOCIETY

के लिए आवेदन किया जा सकता है।

1. माध्यस्थम कार्यवाही के लिए किसी नाबालिग या पागल व्यक्ति के लिए संरक्षक की नियुक्ति हेतु।
2. किसी सामान या वस्तु की अभिरक्षा (custody) सुरक्षा (Preservation) के लिए उपाय करने हेतु बशर्ते कि वह वस्तु या सामान माध्यस्थम करार की विषय वस्तु हो।
3. माध्यस्थम पंचाट के परिणाम स्वरूप किसी धनराशि को प्राप्त करने हेतु उपाय करना
4. किसी वस्तु को रोकने उसकी सुरक्षा या उसके निरीक्षण हेतु उपाय करने बशर्ते कि वह वस्तु या सम्पत्ति माध्यस्थम करार की विषय - वस्तु हो।
5. अन्तरिम व्यादेश (Interim Injunction) प्राप्त करने हेतु
6. प्रापक (Receiver) की नियुक्ति कराने हेतु
7. प्रापक या कोई जानकारी प्राप्त करने हेतु माध्यस्थम करार की सम्पत्ति भूमि या भवन में प्रवेश करने हेतु बशर्ते कि वह सम्पत्ति भूमि या भवन किसी पक्षकार के कब्जे में हो।
8. किसी वस्तु या सामान का अवलोकन करने हेतु या उसका नमूना (Sample) लेने के उद्देश्य से या उस पर प्रयोग करने की अनुमति प्राप्त करने हेतु बशर्ते कि वह
ग

सामान या विषय वस्तु माध्यस्थम् करार की विषय-वस्तु है।

उपाय करने के आदेश देने के लिए न्यायालय को वही अधिकार होगा जो उसे उसके समक्ष लम्बित (Pending) किसी विषय वस्तु के सम्बन्ध में होता है। अपेक्षित उद्देश्य न्यायालय द्वारा माध्यस्थम करार के अन्तर्गत अन्तरिम उपाय करने हेतु एक मार्गदर्शन के रूप में होंगे तथा प्रकार न्यायालय से इस हेतु आधार के रूप में प्रयोग किये जा सकेंगे।

स्मरणीय है कि धारा 9 के अन्तर्गत कुछ अन्तरिम उपाय करने का अधिकार स्वविवेक पर आधारित है। जिसके लिए न्यायालय को सन्तुष्ट कर दिया जाना आवश्यक है। यह धारा सभी अंतरिम उपायों को वर्णित नहीं करती इसके अतिरिक्त भी कुछ अन्तिम उपाय न्यायालय स्वविवेक से कर सकता है। उसके लिए न्यायालय द्वारा मामले के प्रत्येक पहलुओं पर गौर किया जाना आवश्यक है। तथा मामले की प्रत्येक आवश्यकताओं से न्यायालय आदेश करने से पूर्व ध्यान देगा। न्यायालय के इस अधिकार के विरुद्ध पक्षकार तर्क नहीं दे सकता क्योंकि ये अधिकार अधिनियम द्वारा न्यायालय को प्राप्त है।

⇒ क्या माध्यस्थम करार पर पक्षों को हस्ताक्षर करने आवश्यक है।

धारा 7 (3) के अनुसार माध्यस्थम करार लिखित होना चाहिए यद्यपि लिखित करार का कोई

प्रारूप निर्धारित नहीं है। परन्तु करार निश्चित तभी माना जाएगा जब यह पक्षों द्वारा हस्ताक्षरित हो। परन्तु धारा 7(4)(ख) के अनुसार है कि यदि पत्र, टेलेक्स, तार या दूर संचार के अन्य माध्यमों का आदान प्रदान किया गया हो जो करार के एक अभिलेख का प्रावधान करता हो तथा जो दस्तावेजों के रूप में प्राप्य किया जा सके। तब ऐसे करार को लिखित करार माना जाएगा।

धारा 7(4)(ग) के अनुसार, यदि दावा तथा बचाव के आवेदन प्रदान के कथन में एक पक्ष ने करार के अस्तित्व का आरोप लगाया है। और दूसरे पक्ष ने उससे इन्कार नहीं किया है तो भी यह लिखित माध्यस्थम करार माना जाएगा। अतः धारा 7(4) के उपखण्ड (ख) व (ग) से यह प्रकट होता है कि सभी मामलों में माध्यस्थम करार पर पक्षों द्वारा हस्ताक्षरित होना आवश्यक नहीं होता क्योंकि उपरोक्त उपखण्ड संसूचना के ऐसे माध्यमों की मान्यता देते हैं जिनमें पक्षों के हस्ताक्षर की उपधारणा होती है।

⇒ पंच की नियुक्ति की चुनौती के आधार (Ground of Challenge the Appointment of Arbitration.)

धारा 12, जो आदर्श विधि के अनु. 12 के अनुरूप है। एक मध्यस्थ की निष्ठा, उसकी निष्पक्षता

तथा उसकी स्वतन्त्रता (Independence) के आधारों का उल्लेख करती हुई स्पष्ट करती है कि एक मध्यस्थ की नियुक्ति को निम्नलिखित आधारों पर चुनौती दी जा सकती है।

1. धारा 12 की उपधारा (1) के अनुसार, जब एक व्यक्ति से उसकी मध्यस्थ के रूप में सम्भावित नियुक्ति के लिए सम्पर्क किया जा सकता है, तो उसके लिए यह अनिवार्य है कि वह किसी भी ऐसी परिस्थिति की लिखित घोषणा करेगा, जो उसकी एक मध्यस्थ के रूप में निष्पक्षता तथा स्वतन्त्रता पर न्यायोचित संदेह को जन्म देता है।

2. धारा 12 की उपधारा (2) के अनुसार एक मध्यस्थ के लिए यह आवश्यक होगा कि उसकी मध्यस्थ के रूप में नियुक्ति के पश्चात मध्यस्थ कार्यवाही के दौरान, बिना विलम्ब के ऐसी किसी भी परिस्थिति की घोषणा मध्यस्थ के पक्षकारों से करेगा, जो मध्यस्थ के रूप में उसकी निष्पक्षता तथा स्वतन्त्रता पर सन्देह के कारण को जन्म दे सकती है, यदि उसने इसकी पहले से उपकारी पक्षकारों को नहीं दी है।

3. धारा 12 की उपधारा (3) उन आधारों को स्पष्ट करती है, जिनके आधार पर मध्यस्थ की नियुक्ति को चुनौती दी जा सकती है।

(क) यह कि किसी ऐसी परिस्थिति का अस्तित्व है जो मध्यस्थ की निष्पक्षता तथा स्वतन्त्रता पर युक्तियुक्त संदेहों (Reasonable Doubts) को जन्म देती है।

(ख) मध्यस्थ के पास पक्षकारों के इस विषय के करार द्वारा निर्धारित योग्यता (Qualification) नहीं है।

Page-17

4. धारा 12 की उपधारा 4 एक ऐसे पक्षकार को मध्यस्थ की नियुक्ति की चुनौती का अधिकार देती है जिसने उस मध्यस्थ की नियुक्ति की है, या जिसने मध्यस्थ की नियुक्ति में हिस्सा लिया है। इस प्रकार उपधारा (4) एक पक्षकार को स्वयं द्वारा नियुक्त मध्यस्थ की नियुक्ति को इस आधार पर चुनौती देने के अधिकार देती है कि वह ऐसी आधार है जिसकी जानकारी पक्षकार को मध्यस्थ की नियुक्ति के पश्चात हुई है।
दूसरे शब्दों में उपधारा (4) यह प्रावधान करती है कि यदि पक्षकार को मध्यस्थ की नियुक्ति के समय किसी ऐसे आधार की जानकारी थी जिससे मध्यस्थ के पक्षपात का पता चल सकता था तो ऐसे पक्षकार अपने आचरण से विबन्धित (Estoppel) हो जायेगा तथा वह अपने पक्षकार की नियुक्ति को चुनौती नहीं दे सकता। परन्तु यदि पक्षकार यह साबित करने में सफल हो जाता है कि उसे मध्यस्थ की नियुक्ति के समय उसके पक्षपाती होने की जानकारी नहीं थी तो वह स्वयं द्वारा नियुक्त मध्यस्थ की नियुक्ति को चुनौती दे सकता है। तथा विबन्धन का सिद्धान्त उसके विरुद्ध लागू नहीं होगा। यदि वह यह साबित कर दे कि यह तथ्य कि मध्यस्थ पक्षपाती (Bias) था उसकी जानकारी में मध्यस्थ की नियुक्ति के पश्चात आया।

UNITED SECULAR SOCIETY

→ मध्यस्थ की नियुक्ति को चुनौती देने की प्रक्रिया

धारा 13 मध्यस्थ की नियुक्ति को चुनौती देने की निम्न प्रक्रिया निर्धारित करती है। यह धारा 6 उपधाराओं में विभक्त है। धारा 13 संयुक्त राष्ट्र संघ की आदर्श विधि के अनुच्छेद 13 पर आधारित है पुराने माध्यस्थम अधिनियम 1940 की धारा 30 व 34 इसी धारा के अनुरूप थी।

1. धारा 13 की उपधारा (1) माध्यस्थम करार के पक्षकारों को यह स्वतंत्रता देती है कि वे करार द्वारा मध्यस्थ की नियुक्ति को चुनौती देने की प्रक्रिया का स्वेच्छा से स्वयं निर्धारण करें। परन्तु इस प्रक्रिया को निर्धारित करते समय उनके लिए आवश्यक है कि वे सदैव उपधारा (4) के अधीन रहते हुए धारा 13 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए।

2. धारा 13 की उपधारा (2) कहती है कि यदि पक्षकार मध्यस्थ की नियुक्ति हेतु करार द्वारा प्रक्रिया निर्धारित करने में असफल रहते हैं तो उनके लिए मध्यस्थ की नियुक्ति को चुनौती देने के लिए यह आवश्यक है कि वह ऐसे असफलता के पश्चात मध्यस्थ न्यायाधिकरण के गठन की जानकारी के 15 दिन के अन्दर या धारा 13 की उपधारा (3) में वर्णित किसी परिस्थिति के रहते हुए मध्यस्थ अधिकरण को एक लिखित कथन तैयार कर प्रेषित करेंगे जिसमें मध्यस्थ की नियुक्ति को चुनौती देने के कारण को अभिलिखित करेंगे। तब मध्यस्थ अधिकरण इस पर अपना निर्णय देगा।

UNITED SECULAR SOCIETY

3. धारा 13 की उपधारा (3) के अनुसार = जिस मध्यस्थ की नियुक्ति को उपधारा (2) के अन्तर्गत चुनौती दी गई है यदि वह अपने पद से अपने आप को पृथक नहीं कर लेता या पक्षकार चुनौती देने पर सहमत नहीं होते, उपधारा (3) के अनुसार मध्यस्थ अधिकरण चुनौती पर निर्णय देगा।

दूसरे शब्दों में धारा (13) की उपधारा (3) के अनुसार मध्यस्थ अधिकरण चुनौती पर निर्णय तभी देगा जब

1. मध्यस्थों ने स्वयं को अपने पद से पृथक नहीं किया है।
2. पक्षकारों ने करार द्वारा मध्यस्थ की नियुक्ति को चुनौती नहीं दी है।

4. धारा 13 की उपधारा (4) के अनुसार → यदि मध्यस्थ को चुनौती देने का पक्षकारों ने प्रक्रिया की उपधारा (1) के अन्तर्गत करार द्वारा निर्धारण नहीं किया है। या मध्यस्थ अधिकरण के गठन को 15 दिन के भीतर पक्षकारों द्वारा मध्यस्थ की नियुक्ति को मध्यस्थ अधिकरण को चुनौती देने के लिए उपधारा (2) के अन्तर्गत किया गया आवेदन असफल रहा हो तो ऐसी दशा में ~~मध्यस्थ~~ नियुक्त मध्यस्थ अधिकरण मध्यस्थ कार्यवाही जारी रखेगा तथा मध्यस्थ पंचाट का निर्णय करेगा।

5. धारा 13 की उपधारा (5) के अनुसार → यदि वह धारा की उपधारा (4) के अन्तर्गत मध्यस्थ कार्यवाही को जारी रखने हुए मध्यस्थों ने मध्यस्थ पंचाट निर्मित कर

UNITED SECULAR SOCIETY
Session 2015-16.

दिया है तो पक्षकार उस मध्यस्थ पंचाट को निरस्त कराने के लिए एक आवेदन धारा 34 के अनुरूप मध्यस्थ अधिकरण को दे सकेगा।

6. धारा 13 की उपधारा (6) कहती है कि उपधारा (4) के अनुसार निर्मित मध्यस्थ पंचाट को निरस्त करने हेतु उपधारा (5) के अन्तर्गत दिये गये आवेदन के आधार पर मध्यस्थम पंचाट इस आधार पर निरस्त कर दिया जाता है कि चुनौती देने वाले आवेदन को गलत ढंग से निरस्त कर दिया गया था। तो न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया जायेगा कि ऐसे मध्यस्थ जिसकी नियुक्ति को चुनौती दी गई थी को कोई शुल्क या भुगतान किया जाय या नहीं।

Q⇒ एक मध्यस्थ का आदेश कब समाप्त हो जाता है।

धारा 14 की उपधारा (1) के खण्ड (क) तथा (ख) के अनुसार निम्नलिखित कानूनी आधारों पर एक मध्यस्थ का आदेश समाप्त हो जाता है।

1. धारा 14 (1) (क) के अनुसार जब मध्यस्थ विधित: या तथ्यत: अपने कार्यों को करने में असमर्थ हो जाता है या किसी अन्य कारणवश अत्यधिक विलम्ब के बिना कार्य करने में असफल रहता है। दूसरे शब्दों में यदि कोई मध्यस्थ अपनी बीमारी या पागलपन या किसी अन्य कानूनी असमर्थता के अन्तर्गत मध्यस्थ ~~आदेश~~ के रूप में कार्य करने में असमर्थ हो जाता है। तो

ऐसी परिस्थिति में मध्यस्थ के रूप में अधिकार समाप्त हो जाता है।

2. धारा 14 (2) के अनुसार, यदि धारा 14 (क) में निर्धारित आधार के सम्बन्ध में कोई विवाद अस्तित्व में आता है तो मध्यस्थ का आदेश समाप्त हो जायेगा। परन्तु एक पक्षकार उस विवाद को निर्धारित करने हेतु न्यायालय में आवेदन कर सकता है तथा न्यायालय उसके अनुरूप मध्यस्थ की एक राय के सम्बन्धित चरित्र पर अपना निर्णय देगा। परन्तु पक्षकारों को यह अधिकार है कि वे उस सम्बन्ध में अन्यथा करार कर सकेंगे।

3. धारा 14 (1) (ख) के अनुसार, जब मध्यस्थ अपने पद से स्वयं को हटा लेता है या पक्षकार उसके आदेश को समाप्त करने के लिए सहमत हो जाते हैं तो उसकी अधिकारिता तथा उसका आदेश समाप्त हो जायेगा।

4. धारा 14 की उपधारा (3) के अनुसार (2) में उत्पन्न विवाद को हल करने तथा मध्यस्थ के पृथक होने का हल पेश करती है। उपधारा (3) के अनुसार, यदि मध्यस्थ स्वयं को मध्यस्थ कार्यवाही से पृथक कर लेता है या पक्षकार मध्यस्थ के आदेश को समाप्त करने पर सहमत हो जाते हैं। इसका अर्थ धारा 12 (3) या 14 (2) में वर्णित आधारों की

UNITED SECULAR SOCIETY

वैधता की स्वीकृति से नहीं लगाया जाना चाहिए।
धारा 14 संयुक्त राष्ट्र संघ आयोग की आदर्श विधि के अनु० 14 के अनुरूप है इस धारा के अनुसार उन परिस्थितियों में जहाँ मध्यस्थ का आदेश (Mandate) असफल हो जाता है, या जहाँ मध्यस्थ के आदेश पर कार्य करना असम्भव हो जाता है। ऐसी परिस्थितियों में मध्यस्थ का आदेश समाप्त हो जाता है तथा मध्यस्थ की अधिकारिता (Authority) भी समाप्त हो जाती है।

= मध्यस्थ का प्रतिस्थापन (Substitution of Arbitration)

1. धारा 15 उपधारा (1) के अन्तर्गत पक्षकारों को यह स्वतन्त्रता दी गई है कि वे आपसी सहमति द्वारा ऐसे अक्षम मध्यस्थों को पदमुक्त कर सकते हैं जो किसी कारणवश अपने कार्य को करने में अक्षम हैं (Incompetent) हैं या अपने कार्यों को किसी कारणवश नहीं करते हैं। इस प्रकार धारा 15 की उपधारा (1) पक्षकारों को अपने मध्यस्थों के आचरण को निर्धारित करने की स्वतन्त्रता को मान्यता देती है।

⇒ धारा 15 की उपधारा (2) इस प्रश्न का उत्तर देती है कि एक मध्यस्थ की अधिकारिता समाप्त हो जाने के पश्चात उसके स्थानापन्न (Substitute) मध्यस्थ की नियुक्ति कैसे की जाये। यह उपधारा (2) तब अस्तित्व में आती है जब किसी कारणवश मध्यस्थों की अधिकारिता समाप्त हो गई हो पक्षकार एक मात्र मध्यस्थ की कार्यवाही का परित्याग कर सकते हैं।

Session
2015-16

यद्यपि स्थानापन्न मध्यस्थ उस विषय में लागू होने वाले नियम के अनुसार नियुक्त किया जायेगा। तथा किसी भी पक्षकार को स्थानापन्न मध्यस्थ की नियुक्ति को रोकने की अनुमति नहीं है। परन्तु इस सम्बन्ध में पक्षकारों की सहमति आवश्यक है।

(3) धारा 15 (3) स्थानापन्न मध्यस्थ की नियुक्ति के पश्चात स्थानापन्न मध्यस्थ द्वारा कार्यवाही के संचालन का प्रावधान करती है। धारा 15 की उपधारा (3) के अनुसार स्थापन्न मध्यस्थ को यह अधिकार प्राप्त है कि चाहे वह मध्यस्थ कार्यवाही का संचालन प्रारम्भिक स्तर से करे या उस स्तर से जहाँ पूर्ववर्ति मध्यस्थ ने मध्यस्थ कार्यवाही का समापन किया था परन्तु मध्यस्थ के पक्षकार इसके प्रतिकूल भी करार कर सकते हैं।

4 धारा 15 की उपधारा (4) कहती है कि मध्यस्थ अधिकरण की संरचना (Composition) में परिवर्तन के पश्चात नवीन मध्यस्थ की नियुक्ति के पूर्व, पूर्ववर्ती मध्यस्थ द्वारा सम्पन्न कार्यवाही सिर्फ इस आधार पर अवैध नहीं हो जायेगी कि मध्यस्थ अधिकरण के गठन में परिवर्तन हुआ है यद्यपि यह उपधारा मध्यस्थ के पक्षकारों को यह स्वतन्त्रता देती है कि वे करार के माध्यम से यह तय कर सकते हैं कि यह स्वतन्त्रता देती है कि वे करार के माध्यम से यह तय कर सकते हैं। कि नवीन मध्यस्थ / अधिकरण कार्यवाही को नये सिरे से प्रारम्भ करें। इस प्रकार धारा 15 की उपधारा (4) जब तक पक्षकार अन्यथा करार द्वारा सहमत न हों।

UNITED SECULAR SOCIETY

पूर्व मध्यस्थ की कार्यवाही को वैधता प्रदान करने का विवेक नवनियुक्त मध्यस्थ को देती है।

⇒ विदेशी पंचाट का अर्थ (Meaning of foreign Award) धारा 44 के अनुसार, विदेशी पंचाट से तात्पर्य वैधानिक सम्बन्ध, चाहे वे संविदात्मक हो या असंविदात्मक से उत्पन्न होने वाले व्यक्तियों के बीच मतभेदों पर एक माध्यस्थम पंचाट से है जिसे 11 अक्टूबर 1960 को या इसके पश्चात पारित किये गये भारतवर्ष में लागू विधि के अधीन वाणिज्यिक माना गया है।

(क) माध्यस्थम के लिए लिखित तौर पर एक करार के अनुसरण में जिसका अभिसमय अनुसूची में वर्णित हुआ लागू होता है।

(ख) ऐसा प्रकार के राज्यों में एक जिसको केन्द्रीय सरकार हो जाने के कारण समाधान हो जाता है कि प्रतिकूल प्रावधानों को पक्षकारों के होने के रूप में राजपत्र में अधिसूचना द्वारा घोषित किया जा चुका हो जिसके प्रति उक्त अभिसमय लागू होता है।

विदेशी पंचाट की बाध्यता (Bindingness of foreign Award) धारा 46 के अनुसार, कोई भी विदेशी पंचाट जो इस अध्याय के अधीन प्रवर्तनीय होगा, जो उन व्यक्तियों के सभी उद्देश्यों के लिए बाध्यकारी होने के रूप में व्यवहृत किया जायेगा, जिनके बीच यह किया गया और तदनुसार उस पर भारतवर्ष में किसी भी विधिक कार्यवाही में बचाव या प्रतिसादन (set off) के माध्यम

से या अन्यथा उन सभी व्यक्तियों पर विश्वास किया जा सकेगा और एक विदेशी पंचाट को लागू होने योग्य बनाने के लिए इस अध्याय में किसी भी निर्देश का अर्थान्वयन एक पंचाट पर विश्वास करने के सन्दर्भ को सम्मिलित करने वाले के रूप में किया जायेगा।

विदेशी पंचाट को लागू करने के लिए साक्ष्य (Evidence for the Enforcement of Foreign Award) धारा 47 के अनुसार

1. एक विदेशी पंचाट को लागू करने के लिए आवेदन करने वाले पक्षकार, आवेदन पत्र के समय न्यायालय के समक्ष पेश करेगा।

(क) मूल पंचाट या उस देश की विधि के द्वारा अपेक्षित ढंग से उचित रूप से प्रमाणित की गयी उसकी प्रतिलिपि जिसमें इसका निर्णय किया गया है।

(ख) माध्यस्थम् के लिए मूल करार या उसकी उचित रूप से प्रमाणित की गयी एक प्रतिलिपि और

(ग) एक साक्ष्य यह सिद्ध करने के लिए आवश्यक है कि पंचाट एक विदेशी पंचाट है।

2. यदि उपधारा (1) के अधीन पेश किया जाने वाला पंचाट या करार एक विदेशी भाषा में हो तो पंचाट को प्रवर्तनीय बनाने की मांग करने वाले पक्षकार उस देश के कांसलीय अभिकर्ता या एक कूटनीतिक द्वारा सही होने के रूप में प्रमाणित की गयी इंगलिश में एक अनुवाद पेश करेगा। जिसका वह पक्षकार है। यह भारत वर्ष में लागू विधि के अनुसार इस प्रकार के ढंग से उतना सही है जितना पर्याप्त हो सकेगा।

न्यायिक प्राधिकरण की शक्ति (Power of Judicial Authority) धारा 45 के अनुसार सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 या किसी एक भाग में किसी बात के होते हुए भी एक न्यायिक प्राधिकरण, जब एक मामले में कार्यवाही को बन्द कर देगा जबकि उसके सन्दर्भ में पक्षकारों में विवाद को मध्यस्थता के लिए निर्देशित किये जाने हेतु करार हो बशर्ते कि कथित करार अकृत एवं शून्य (Null & Void) अक्रिय Inoperative) या पालन के अयोग्य प्रतीत न हुआ हो।

⇒ सुलह कार्यवाही का अर्थ (Meaning of Conciliation Proceedings) धारा 61 के अनुसार ⇒

इस अधिनियम के भाग 3, के अन्तर्गत जब तक पक्षकारों के बीच अन्यथा करार नहीं होता तब तक यह भाग कानूनी सम्बन्ध से उत्पन्न होने वाले विवादों के सुलह पर लागू होगा। चाहे संविदात्मक हो या न हो और उससे सम्बन्धित सभी कार्यवाहियों पर भी लागू होगा यह भाग वहाँ लागू नहीं होगा, जहाँ उस समय लागू होने वाली किसी भी विधि के गुण द्वारा कुछ विवादों को सुलह हेतु पेश नहीं किया जा सकता है। धारा 61 दो उपधाराओं में विभाजित है धारा 61(1) के अनुसार जब तक पक्षों के मध्य इसके विपरीत करार न हो यह भाग सभी विवादों पर लागू होता है चाहे ही विवाद संविदात्मक हो या असंविदात्मक बशर्ते कि विवाद वैधानिक सम्बन्धों से उत्पन्न हुआ हो।

सुलह कार्यवाही का आरम्भ (Commencement of Conciliation Proceedings) - धारा 62 के अनुसार सुलह कार्यवाही को प्रारम्भ करने वाला पक्षकार विवाद के विषय का संक्षिप्त तौर पर ज्ञान कराने के लिए एक लिखित निमन्त्रण भेजेगा। सुलह कार्यवाही उस समय प्रारम्भ होगी जब दूसरा पक्षकार सुलह करने के लिए लिखित आमंत्रण को स्वीकार करता है यदि दूसरा पक्षकार लिखित आमन्त्रण को लिखित अस्वीकार कर देता है। तो कोई सुलह कार्यवाही नहीं होगी। यदि सुलह प्रारम्भ करने वाला पक्षकार उस तिथि से तीस दिनों के भीतर उत्तर प्राप्त नहीं करता है। जिस पर वह आमंत्रण भेजता है। तो वह सुलह करने के लिए आमंत्रण की अस्वीकृति होने के रूप में उसके साथ व्यवहार करने का चुनाव कर सकेगा और यदि वैसा चुनाव करता है। तो वह तदनुसार दूसरे पक्षकार को लिखित सूचना देगा।

सुलहकर्ताओं की संख्या एवं नियुक्ति (Number and Appointment of Conciliators) धारा 63 के अन्तर्गत यह प्रावधान किया गया है कि जब तक पक्षकारगण के या तो सुलहकर्तागण होने की सहमति नहीं करते, सुलहकर्ता केवल एक ही होगा। एक से अधिक सुलहकर्ता होने की स्थिति में उन्हें संयुक्त रूप से कार्य करने के लिए एक सामान्य नियम के रूप में होना चाहिए।

Session
2015-16

UNITED SECULAR SOCIETY

धारा 64(1) के अन्तर्गत सुलहकर्ता की नियुक्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित उपबन्ध किये गये है।

(क) एक सुलहकर्ता के साथ-कार्यवाही में, पक्षकारगण, एकल सुलहकर्ता के नाम पर सहमत हो सकेंगे।

(ख) दो सुलहकर्ता के साथ सुलह-कार्यवाही में प्रत्येक पक्षकार एक सुलहकर्ता की नियुक्ति कर सकेगा।

(ग) तीन सुलहकर्ताओं के साथ, सुलह कार्यवाही में, प्रत्येक पक्षकार एक सुलहकर्ता की नियुक्ति कर सकेगा और तीसरे सुलहकर्ता के नाम पर सहमत हो सकेगा। जो पीठासीन अधिकारी (Presiding officer) की हैसियत से कार्य करेगा।

2. पक्षकारगण एक उपयुक्त संस्था की सहायता या सुलहकर्ताओं की नियुक्ति के बारे व्यक्ति को सूचित कर सकेंगे, और विशेषतौर पर

(क) एक पक्षकार, सुलहकर्ता की हैसियत से उपयुक्त व्यक्तियों के नामों का अनुमोदन करने के लिए इस प्रकार की एक संस्था या व्यक्ति से निवेदन कर सकेगा। या

(ख) पक्षकारगण यह करार कर सकेंगे कि एक या अधिक सुलहकर्ताओं की नियुक्ति ऐसी एक संस्थान या व्यक्ति द्वारा प्रत्यक्षतः किया जाता है।

परन्तु यह तब जबकि, सुलहकर्ता के रूप में कार्य करने के लिए व्यक्तियों का अनुमोदन करने में या नियुक्ति करने में, संस्था या व्यक्ति के पास ऐसे प्रतिफलों को ध्यान में रखेगा। जिससे एक स्वतन्त्र और अपूर्ण सुलहकर्ता की नियुक्ति किये जाने की सम्भावना होती है और एक एकल या तृतीय

सुलहकर्ता के सन्दर्भ, पक्षकारों की राष्ट्रीयताओं से भिन्न एक राष्ट्रीयता के एक सुलहकर्ता की नियुक्ति करने की परामर्श दिये जाने को ध्यान में रखेगा।

⇒ सुलहकर्ता के कथनों का प्रस्तुतीकरण ⇒ धारा 65 के अनुसार, सुलहकर्ता, अपनी नियुक्ति पर विवाद की सामान्य प्रकृति और वाद बिन्दु का वर्णन करने वाला एक संक्षिप्त लिखित कथन स्वयं को पेश करने का निवेदन प्रत्येक पक्षकार से करेगा प्रत्येक पक्षकार दूसरे पक्षकार को ऐसे कथन की एक प्रतिलिपि भेज देगा सुलहकर्ता उचित समझे जाने पर पक्षकार से उपयुक्त दस्तावेज, साक्ष्य एवं अन्य कथन स्वयं को पेश करने के लिए निवेदन करेगा। सुलह कार्यवाही के किसी भी प्रक्रम पर सुलहकर्ता, उचित समझे जाने पर, पक्षकार से स्वयं को कोई अतिरिक्त सूचना भेजने के लिए निवेदन करेगा।

वैकल्पिक विवाद निश्चय की प्रविधियां

(1) वार्ता (Negotiations) विवादों को हल करने के लिए विवाद के पक्षों की आपसी वार्ता सबसे सफल व उत्तम उपाय है यह एक अबन्धनकारी प्रक्रिया है। जिसमें विवाद के पक्षकार प्रत्यक्ष रूप से वार्ता में शामिल होते हैं इसमें किसी तीसरे पक्ष का कोई हस्तक्षेप नहीं होता विवाद के पक्षों के अनुसार यह वार्ता द्विपक्षीय या बहुपक्षीय हो सकती है। इसमें विवाद का प्रत्येक पक्ष विवाद के दूसरे पक्ष के पास एक ऐसा बातचीत किया गया समझौता

Session
2015-16

जिसमें प्रत्येक पक्ष की स्थिति का विषयनिष्ठ मूल्यांकन होता है। लेकर जाता है। और आपसी सहमति के आधार पर अन्तिम रूप से मैत्रीपूर्ण समझौते की स्थापना करता है। ऐसी वार्ता के (i), वस्तुपरकता तथा (ii) ईमानदारी दो मुख्य आवश्यक लक्षण होते हैं।

(2) मध्यस्थता / सुलह (Mediation / Conciliation) — मध्यस्थता और सुलह एक ऐसी अबन्धकारी प्रक्रिया है जिसमें एक तीसरा तटस्थ पक्ष झगड़े के पक्षों से उनकी आपसी सहमति के आधार पर समझौता कराने में सहायता करता है। वास्तव में मध्यस्थता और सुलह एक दूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं दोनों ही प्रक्रियाओं में विवाद के समझौते को पक्षों के बीच उनकी पारस्परिक स्वतन्त्र सहमति के आधार पर लागू किया जाता है। यद्यपि कुछ मामलों में मध्यस्थता को सुलह से भिन्न माना जाता है क्योंकि मध्यस्थता में सुलह की अपेक्षा तीसरे तटस्थ पक्ष की निश्चयात्मक भूमिका पर अधिक बल दिया जाता है। फिर भी यह तथ्य मध्यस्थता को सुलह से अलग नहीं कर सकता क्योंकि तीसरे तटस्थ पक्ष की भूमिका का विस्तार जैसे पक्षों की ईमानदारी की मात्रा और तटस्थ व्यक्तियों की बुद्धि पर निर्भर करता है।

(3) मध्यस्थता – विवाचन ⇒ (Mediation / Arbitration)
मध्यस्थता विवाचन विवाद हल की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत पक्षकार अपने विवाद को निर्धारित अवधि में सर्वप्रथम सुलह द्वारा तथा इसके असफल

UNITED SECULAR SOCIETY

होने पर विवाचन द्वारा हल करने के लिए सहमत होते हैं। माध्यस्थम् कार्यवाहियों में यदि समझौता हो जाता है तो उसे स्वीकृत शर्तों के आधार पर वे पंचाट (Award) द्वारा समाप्त हो जाती है।

4. लघु परीक्षण (Mini trial) लघु परीक्षण एक ऐसी अबन्धनकारी प्रक्रिया है। जिससे विवाद के पक्षकार अपने अपने मामलों को अपने अपने ऐसे निष्पादकों (Executors) जो निर्णय लेने के लिए सक्षम होते हैं तथा जिनकी सहायता किसी तीसरे तटस्थ पक्ष के द्वारा की जाती है, के सामने पेश करते हैं, इस प्रकार निष्पादकगण विवाद का विषयनिष्ठ मूल्यांकन करते हैं और यदि सम्भव हो तो वे आपस में एक मैत्रीपूर्ण समझौता कर सकते हैं।

5. विवाचन (Arbitration) ⇒ विवाचन एक ऐसी बन्धनकारी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत विवाद को उपाय-निर्णय के लिए किसी ऐसे मध्यस्थ न्यायाधिकरण को सौंपा जाता है जो या तो एक मात्र या अन्य असमान संख्या वाले विवाचकों से गठित होता है तथा जो अपना निर्णय ऐसे पंचाट के लिए देता है जो विवाद को अन्तिम रूप से निपटाता है।

6. तीव्र पथ विवाचन (Fast track Arbitration) यह विवाचन एक ऐसी बन्धनकारी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत विवाद के पक्षकार विवाद को ऐसी मध्यस्थम कार्यवाही को सौंपने के लिए सहमत होते हैं जो मध्यस्थम पंचाट को शीघ्रता से कम समय में प्रदान करे।

UNITED SECULAR SOCIETY

⇒ लोक अदालत का संगठन (Organization of Lok Adalats)
लोक अदालत का संगठन नियमित रूप से स्टेट लीगल एवं एडवाइस बोर्ड द्वारा जिला वैधानिक सहायता एवं सलाह समिति की सहायता से किया जाता है फिर भी कुछ लोक अदालतों को स्वैच्छिक वैधानिक सहायता अभिकरणों, विधि के महाविद्यालयों या बार एसोसिएशन द्वारा आयोजित किया जा रहा है। लोक अदालतों के सदस्यों के अन्तर्गत ऐसे अनुभवी एवं विधि - विशेषज्ञ जिसके अन्तर्गत साधारणत: प्रायः न्यायाधीश, समाज सेवी वकील, व्यक्ति एवं विधि शिक्षक आते हैं जो अपने समाज के कारण ख्याति प्राप्त या जो पेशे के प्रति समर्पित और सामाजिक कार्य में रुचि रखते हैं।

⇒ वैधानिक सहायता परिषद (Legal Aid Board) प्रत्येक जिले के लिए, प्रत्येक राज्य के हाई कोर्ट एवं जिला न्यायालय जज और बार एसोसिएशन की सलाह से एक पैनल की नियुक्ति करती है कि जिले में संगठित लोक अदालत के लिए न्यायाधीशों की वांछित संख्या पैनल में से ली जाती है। न्यायाधीशों के अलावा लोक अदालत के लिए सामाजिक कार्यकर्ता, स्थानीय प्रशासकीय अधिकारीगण एवं बार और बेंच के सदस्य भी शामिल किये जाते हैं। लोक अदालत के पैनल के सदस्य अपनी सामाजिक सेवायें बिना किसी वेतन के करते हैं।

लोक अदालत में अनौपचारिक प्रक्रिया का पालन किया जाता है। यह प्रक्रिया लचीली एवं अविवादित होती है। हालांकि इस प्रक्रिया में कुछ मात्रा

तक सकता और न्याय एवं निष्पक्षता का न्यूनतम स्तर धारण करने का विचार रहता है। लोक अदालत के पीछे 'जियो और जीने दो', 'लो और दो' की भावना विद्यमान रहती है। लोक अदालतों द्वारा हल किये मामलों में न तो किसी पक्ष की जीत होती है, और न किसी पक्ष की हार होती है।

= लोक अदालतों द्वारा किस प्रकार के मामले निपटाए किये जाते हैं।

आरम्भ में लोक अदालतों द्वारा केवल दीवानी, राजस्व और फौजदारी के ऐसे विवाद जो शमनीय प्रकृति के होते थे निपटाए किये जाते हैं। तत्पश्चात् लोक अदालतों द्वारा विवादों को तय करने में मिली सफलता और जनरल इन्श्योरेन्स कारपोरेशन आफ इण्डिया के चेयरमैन के सहयोग के कारण कानूनी सहायता प्रवर्तन समिति (CILAS) ने यह प्रार्थना की कि मोटर दुर्घटना मुआवजा सम्बन्धी दावे भी लोक अदालत द्वारा निपटाए कराये जायें फलस्वरूप अब अनेक ऐसे मुआवजा सम्बन्धी दावे जो न्यायाधिकरण के समक्ष विचाराधीन और लम्बित थे जिनके निर्णय में वर्षों लगते थे, यथाशीघ्र लोक अदालत द्वारा निपटाये जाने लगे हैं। इसके अलावा लोक अदालत के सामने दाखिल खारिज, भूमि के पट्टे, वन भूमि, बेगार श्रम, भूमि अन्तर, वैवाहिक एवं पारिवारिक झगड़े और बैंक ऋण सम्बन्धी मामले आदि भी लोक अदालत के लिए पेश किये जाने लगे हैं।

UNITED SECULAR SOCIETY

⇒ लोक अदालत के महत्व (Importance of lok Adalats)

लोक अदालत के महत्व का अंदाजा इसके द्वारा प्राप्त उपलब्धियों से लगाया जा सकता है। 31 मार्च 1996 तक देश में 13 लाख अदालत हो चुकी है जिनमें लगभग 50 लाख मामलों का निपटारा किया जा चुका है जिनमें से 2,78,801 मोटर दुर्घटना दावे जो ट्रिब्यूनल के सामने विचाराधीन थे निपटित किये गये है और कई पक्षकारों को 8 अरब मिलियन की रकम मुआवजे के रूप में भुगतान कर दी गई है। इस प्रकार लोक अदालतों द्वारा निपटाये गये मामलों से यह प्रकट होता है कि यह प्रक्रिया आम जनता की पहुँच के पास है और इसकी लोकप्रियता दिन दुगुनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही है।

⇒ कानूनी सेवा प्राधिकार अधिनियम, 1987 की धारा 21 के अनुसार,

लोक अदालत द्वारा जारी किया गया प्रत्येक एवार्ड दीवानी न्यायालय की एक डिक्री के समान समझा जायेगा। ऐसा प्रत्येक एवार्ड अन्तिम तथा पक्षों पर बाध्यकारी माना जायेगा और ऐसे एवार्ड के खिलाफ किसी भी न्यायालय में कोई अपील दायर नहीं कि जायेगी जहाँ कोई मामला उक्त अदालत को उक्त अधिनियम की धारा 20(1) के अन्तर्गत सन्दर्भित किया गया होता है और लोक अदालत मामले का फैसला करा देती है तो वहाँ न्यायालय में पहले से जमा की गई फीस वादकारी को लौटा दी जायेगी।

UNITED SECULAR SOCIETY

⇒ निर्धन को निशुल्क कानूनी सहायता (Free Legal Aid to Poors)

30 डॉ. लास्की के अनुसार ⇒ जो व्यक्ति निर्धन की व्यथा समझता है, उसे यह महसूस होगा कि आर्थिक सुरक्षा अनहीन है। महात्मा गाँधी का कहना था कि - प्रत्येक व्यक्ति को काम मिले वह अपनी मेहनत का स्वाद ले वह रोटी, कपड़ा और मकान की न्यूनतम आवश्यकताओं को पाते हुए एक सम्पूर्ण जीवन जिये।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना और अनुच्छेद 38 के में जिस सामाजिक न्याय की कल्पना की गई है। वह गरिमा के साथ जीने के अर्थपूर्ण अधिकार से जुड़ी हुई है। सामाजिक न्याय समाज के कमजोर वर्गों के दुःख और दर्द को दूर करने तथा प्रत्येक व्यक्ति को मानवीय गरिमा के साथ जीवन जीने का मौका उपलब्ध कराने वाली एक गतिशील युक्ति है यह न केवल एक सामान्य विचार है बल्कि दलित एवं शोषित वर्ग की पीड़ा को दूर करने वाली एक मूल अवधारणा है विधि के शासन में विभिन्न वर्ग विभेद को समाप्त करना सामाजिक न्याय की ही एक परिणति है। सामाजिक न्याय संविधान के उस उद्देश्य को प्राप्त करने की एक अर्थपूर्ण कल्पना है। जो सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक समानता की गारण्टी देता है।

सामाजिक न्याय की इस अवधारणा को साकार रूप प्रदान करने के लिए संविधान के 42वें संविधान द्वारा संविधान में एक नया अनु 39 (क) जोड़ा गया है ~~संविधान~~ जिसमें कहा गया है कि

Session 2015-16

कोई भी व्यक्ति केवल धनाभाव के कारण न्याय प्राप्त करने वंचित नहीं रहेगा। अनु 39 (क) राज्य को यह निर्देश देता है कि वह यह सुनिश्चित करे कि कानूनी ~~सहायता~~ व्यवस्था इस प्रकार काम करे कि सभी को अवसर के आधार सुलभ हो और वह विशेष रूप से आर्थिक या किसी अन्य अयोग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाये तथा उपयुक्त विधान द्वारा या अन्य किसी तरीके से निशुल्क कानूनी सहायता की व्यवस्था करे।

निशुल्क कानूनी सहायता (Free Legal Aid) और शीघ्र परीक्षण अनु: 21 के अधीन बंदियों के मूल अधिकार माने जाते हैं और इन्हें लागू करना न्यायालय का प्रथम कर्तव्य है।

दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 303 → में अभियुक्त को अपने बचाव के लिए अपना मनपसंद वकील नियुक्त करने का अधिकार है। परन्तु इससे पहले ही तारासिंह ब. स्टेट AIR 1915 में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि ऐसा अधिकार व्यर्थ है जब तक कि अभियुक्त के पास वकील को नियुक्त करने के लिए साधन न हो। फलस्वरूप भारतीय संसद द्वारा न केवल संविधान के अनु 39(क) में बल्कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 304 व कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 में निःशुल्क कानूनी सहायता की व्यवस्था की है।

Session
2015-16

सरकारी खर्चे पर अभियुक्त को निशुल्क कानूनी सहायता
दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 304 के अनुसार यदि
सेशन न्यायालय के समक्ष विचारण के दौरान
अभियुक्त की ओर से कोई वकील उसके प्रतिनिधि
के रूप में पेश न हुआ हो और न्यायालय
को ऐसा दिखाई दे कि अभियुक्त वकील नियुक्त
करने में असमर्थ है या उसके पास ऐसा
करने के लिए पर्याप्त साधन नहीं है तो
न्यायालय उसके बचाव के उद्देश्य से निशुल्क
सरकारी वकील उपलब्ध करायेगा।
कानूनी सेवाओं के हकदार व्यक्ति - धारा 13(1) के अनुसार,
वे व्यक्ति जो धारा 12 में वर्णित एक या
सभी शर्तों को पूरा करते हो कानूनी सेवाओं
को प्राप्त करने के अधिकारी होंगे बशर्ते कि
सम्बन्धित प्राधिकारीगण इस बात से सन्तुष्ट हो
जाये कि ऐसा व्यक्ति प्रथम दृष्टया किसी मामले
को दायर करने या उसमें बचाव करने का
अधिकारी है।
धारा 13(2) के अनुसार, किसी व्यक्ति के द्वारा
दिया गया अपनी आय के बारे में
शपथ पत्र उसको कानूनी सेवायें प्राप्त करने की
पात्र (Eligiblity) का पर्याप्त आधार माना जायेगा।
जब तक कि सम्बन्धित प्राधिकारी
ऐसे शपथ-पत्र को मिथ्या मानने का कारण
न रखता हो।

⇒ अपील योग्य आदेश (Appealable order)

Session
2015-16

सरकारी खर्चे पर अभियुक्त को निशुल्क कानूनी सहायता

दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 304 के अनुसार यदि सेशन न्यायालय के समक्ष विचारण के दौरान अभियुक्त की ओर से कोई वकील उसके प्रतिनिधि के रूप में पेश न हुआ है और न्यायालय को ऐसा दिखाई दे कि अभियुक्त वकील नियुक्त करने में असमर्थ है या उसके पास ऐसा करने के लिए पर्याप्त साधन नहीं है तो न्यायालय उसके बचाव के उद्देश्य से निशुल्क सरकारी वकील उपलब्ध करायेगा।

कानूनी सेवाओं के हकदार व्यक्ति → धारा 13(1) के अनुसार, वे व्यक्ति जो धारा 12 में वर्णित एक या सभी शर्तों को पूरा करते हो कानूनी सेवायें को प्राप्त करने के अधिकारी होंगे बशर्ते कि सम्बन्धित प्राधिकारीगण इस बात से सन्तुष्ट हो जाये कि ऐसा व्यक्ति प्रथम दृष्टया किसी मामले को दायर करने या उसमें बचाव करने का अधिकारी है।

धारा 12(2) के अनुसार, किसी व्यक्ति के द्वारा दिया गया अपनी आय के बारे में शपथ पत्र उसको कानूनी सेवायें प्राप्त करने की पात्र (Eligiblity) का पर्याप्त आधार माना जायेगा। जब तक कि सम्बन्धित प्राधिकारी ऐसे शपथ-पत्र को मिथ्या मानने का कारण न रखता हो।

⇒ अपील योग्य आदेश (Appealable order)

UNITED SECULAR SOCIETY

Session 2015-16

(ए) माध्यस्थम अधिकरण द्वारा पारित आदेश –
धारा 37 (2) उपबन्धित करती है कि माध्यस्थम अधिकरण द्वारा पारित निम्नलिखित आदेशों के विरुद्ध न्यायालय में अपील की जा सकती है।

(i) धारा 16 (2) या 16 (3) के अधीन प्रस्तुत आवेदन को स्वीकार करने का आदेश

(ii) धारा 17 के अन्तर्गत अन्तरिम उपाय के आवेदन को स्वीकार या अस्वीकार करने का आदेश।

(२) न्यायालय द्वारा पारित आदेश – धारा 37 (1) के के अनुसार न्यायालय द्वारा पारित निम्नलिखित आदेशों के विरुद्ध अपील की जा सकती है।

1. धारा 9 अन्तर्गत पारित आदेश के विरुद्ध
2. धारा 34 के तहत पंचाट को अपास्त करने या करने के आदेश के विरुद्ध न्यायालय के द्वारा पारित आदेश एक डिक्री के स्तर का होगा। तथा धारा 3 (e) के अनुसार उसकी अपील होगी।

धारा 37 के प्रावधान से स्पष्ट है कि जिन आधारों पर माध्यस्थम अधिकरण के आदेश के विरुद्ध अपील हो सकती है वे आधार विनिर्दिष्ट एवं सीमित है।

पश्चिम बंगाल राज्य बनाम गौरीलाल (1993) 3 एस एस सी 1 – के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि इस धारा के अन्तर्गत माध्यस्थ के पंचाट या अभिनिर्णय के आधार पर अपील नहीं हो सकेगी क्योंकि यह धारा केवल माध्यस्थम अधिकरण के आदेशों के विरुद्ध का ही प्रावधान करती है।

3 अपील के लिए समयावधि (Limitation for Appeal)
धारा 37 में अपील के लिए कोई समय सीमा नहीं दी गई है, परन्तु सामान्यतया उच्च न्यायालय में 90 दिन के भीतर तथा उच्चतम न्यायालय में 30 दिन के भीतर अपील की जानी चाहिए।
पक्षकार यह तय करने के लिए स्वतंत्र है कि अपील कितने समय के भीतर की जानी चाहिए
द्वितीय अपील (Second Appeal) अधिनियम की धारा 37 (2) उपबन्धित करती है कि अपील में पारित आदेश से द्वितीय अपील नहीं की जायेगी परन्तु इस धारा के अधीन उच्चतम न्यायालय को अपील करने के किसी अधिकार को प्रभावित या समाप्त नहीं समझा जायेगा
इस प्रकार इस अधिनियम के प्रावधानों के द्वारा उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार को कम या समाप्त नहीं किया गया है।
स्विस्ट कंपनी अबर्स बनाम मध्यप्रदेश स्टेट वेयरहाउसिंग कॉर्पोरेशन ए० आई० 1993 एस० सी० 840 के मामले में उच्चतम न्यायालय के निचली अदालत द्वारा मध्यस्थम कार्यवाही के स्थगन से इन्कार किये जाने के विरुद्ध अपील के आवेदन को अस्वीकार कर दिया

⇒ दाम्पत्य विवादों में समझौता (Settlement of Matrimonial Disputes) ⇒ भारत में कई धर्मों के लोग निवास करते हैं उन सब की अपनी-अपनी पारिवारिक विधियां हैं दाम्पत्य विवादों

को आपसी समझौते द्वारा निबटने की प्रथा हिन्दू धर्म में पुराने समय से ही चली आ रही है। क्योंकि हिन्दू धर्म में विवाह एक संस्कार है। ज्यों ही हिन्दू विधि का संहिताकरण हुआ तब उसमें इस प्रावधान को रखा गया हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 में दाम्पत्य सम्बन्धी विवादों को आपसी समझौते द्वारा सुलझाने सम्बन्धी प्रावधान निम्नलिखित है।

1. दाम्पत्य अधिकारों की पुनर्स्थापना के सम्बन्ध में
हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 9 के प्रावधानों में उल्लेखित किया गया है कि पति तथा पत्नी बिना किसी उचित कारण के एक दूसरे से अलग नहीं रह सकते हैं यदि ऐसा होता है तो उनमें से कोई भी दाम्पत्य अधिकारों की पुनः प्राप्ति के लिए आवेदन कर सकता है। क्योंकि पति पत्नी का एक साथ रहकर दाम्पत्य कार्यों का निर्वहन करना ही विवाह का सामाजिक एवं धार्मिक उद्देश्य है।
दाम्पत्य अधिकारों की पुनर्स्थापना के बाद भी सहमति से निर्णित हो सकता था प्रतिपादित विधि के सिद्धान्त निर्धारित किये गये -

1. दाम्पत्य अधिकारों की पुनर्स्थापना की डिक्री का अनुपालन न होना विवाह विच्छेद अन्य डिक्री की तरह से सहमति से पारित हो सकती है सहमति से पारित डिक्री को दुरभिसंधि डिक्री नहीं कहा जा सकता है।

2. दाम्पत्य अधिकारों की पुनर्स्थापना की डिक्री का अनुपालन

UNITED SECULAR SOCIETY

न होना विवाह विच्छेद का ग्यारहवाँ आधार है।

3. दाम्पत्य अधिकारों की पुनर्स्थापना का अधिकार विवाह का एक आवश्यक अंग है इसे प्राण तथा दैहिक स्वतन्त्रता से नहीं जोड़ा जा सकता है और न यह कहा जा सकता है कि यह उसके विपरीत है।

4. दाम्पत्य अधिकारों की पुनर्स्थापना की डिक्री का अनुपालन न्यायालय द्वारा नहीं कराया जा सकता है क्योंकि न्यायालय दूसरे पक्षकार को उसके साथ सहवास करने के लिए मजबूर नहीं कर सकती है।

२. पारस्परिक सहमति से विवाह विच्छेद (Divorce by mutual Consent)
विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम 1976 की धारा 13(b) के अन्तर्गत विवाह दोनों पक्षकारों द्वारा विवाह के विघटन के लिये याचिका जिला न्यायालय में इस आधार पर प्रस्तुत की जा सकती है कि वे 1 वर्ष या उससे अधिक समय तक अलग रह रहे हैं। वे साथ नहीं रह सके हैं तथा आपस में यह निश्चित कर चुके हैं कि विवाह विघटित कर दिया जाए। ऐसी याचिका प्रस्तुत किए जाने की तिथि से छः माह के पश्चात और 18 माह के भीतर दोनों पक्षकारों के प्रस्ताव को सुनने के पश्चात और ऐसी जाँच जैसा वह ठीक समझे करने के पश्चात अपना समाधान कर लेने पर कि विवाह सम्पन्न हुआ है और याचिका के वर्णित तथ्य सत्य है।

UNITED SECULAR SOCIETY

यदि इस बीच याचिका वापस नहीं ली गई है तो वह घोषणा कर विवाह विच्छेद की आज्ञप्ति प्रदान कर सकेगा।
सतीष कुमार बनाम वीरेन्द्र कुमार → ए0 आई आर 1986 राज0 158 के मामले मे अभिनिश्चित किया गया कि धारा 13(b) के अन्तर्गत प्रस्तुत प्रार्थना पत्र 18वे माह के पूर्व किसी भी समय वापस लिया जा सकता है।

3. कार्यवाही के दौरान न्यायालय के कर्तव्य ⇒ अधिनियम की धारा 23 की उपधारा (2) में यह उपबन्ध किया गया है कि इस अधिनियम के अधीन कोई अनुतोष अनुदत्त करने के लिए अग्रसर होने के पूर्व न्यायालय का यह प्रथम कर्तव्य होगा कि वह ऐसी दशा में जहाँ कि मामले की प्रकृति और परिस्थितियों से संगत रहते हुए ऐसा करना सम्भव हो पक्षकारों के बीच मेल मिलाप करने का पूर्ण प्रयास करे।
धारा 23 की उपधारा (3) उपबन्धित करती है कि - ऐसी मेल मिलाप कराने में न्यायालय की सहायता के प्रयोजनार्थ यदि पक्षकार चाहें तो, या यदि न्यायालय ऐसा करना न्यायसंगत और उचित समझता है, तो कार्यवाहियों को पन्द्रह दिन से अनधिक युक्तियुक्त कालावधि के लिये स्थगित कर सकेगा और इस मामले को पक्षकारों द्वारा

UNITED SECULAR SOCIETY

इस निमित्त नामित किसी व्यक्ति को यह यदि पक्षकार किसी व्यक्ति को नामित करने में असफल होते हैं तो न्यायालय द्वारा नाम निर्दिष्ट किसी व्यक्ति को इन निदेशों के साथ निर्दिष्ट कर सकेगा कि वह न्यायालय को इस बात की रिपोर्ट दे कि क्या मेल मिलाप किया जा सकता है और करा दिया गया है और न्यायालय, कार्यवाही का निपटारा करने में ऐसी रिपोर्ट पर सम्यक् ध्यान देगा)

4. कार्यवाही के दौरान पक्षकारों द्वारा समझौता

वाद में चलते रहने के दौरान पक्षकार कभी कभी आपसी समझौता भी कर लेते हैं तब वहाँ न्यायालय का यह कर्तव्य होता है कि वह उसी करार के अनुसार डिक्री पारित करे।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि हिन्दू विवाह पारिवारिक विधि के अन्तर्गत समझौते की कार्यवाही अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

⇒ औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अन्तर्गत समझौता कार्यवाही

श्रमिक विवादों को निपटाने में समझौता कार्यवाही का महत्वपूर्ण स्थान है। इसी कारण से औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 के तहत समझौता तंत्र की व्यवस्था की गई है।

UNITED SECULAR SOCIETY

इस समझौता पत्र में निम्नलिखित तीन प्राधिकारियों की नियुक्ति सम्बन्धी प्रावधानों को उल्लेखित किया गया है।

1. कार्य समिति → औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 3 (1) एक कार्य-समिति की व्यवस्था देती है जिसके अनुसार किसी औद्योगिक संस्थान के मामले में जिसमें पिछले 12 महीनों के किसी दिन 100 या अधिक व्यक्ति नियुक्त होते हैं तो समुचित सरकार अपनी सामान्य या विशेष आज्ञा द्वारा नियोजक से चाहती है कि वह निर्धारित रीति में एक कार्य समिति का जिसमें स्थापना में लगे हुए मालिकों और कर्मचारियों का स्थान हो गठन करे। इस समिति में कामगारों के प्रतिनिधि संख्या में मालिक के प्रतिनिधियों से कम नहीं होंगे। इस समिति में अधिकतम 20 सदस्य हो सकते हैं। संस्थान प्रतिष्ठान में लगे हुए कर्मचारियों में से निर्धारित रीति द्वारा कामगारों के प्रतिनिधियों का चुनाव होगा और यदि कोई प्रतीकृत श्रमिक संघ इण्डियन ट्रेड यूनियन एक्ट 1926 के अन्तर्गत पंजीकृत हो तो उसका भी परामर्श लिया जायेगा।

कर्तव्य (Duties) कार्य-समिति के निम्नांकित कर्तव्य होंगे।

(1) मालिक और कामगारों के बीच मैत्री-सम्बन्धों को प्राप्त करना तथा उनकी सुरक्षा करने के उपायों में वृद्धि करना, तथा

(2) उस लक्ष्य की पूर्ति के लिये अपने सामान्य हित या सम्बन्ध के मामलों पर टिप्पणी करना और

UNITED SECULAR SOCIETY

ऐसे मामलों के सम्बन्ध में बातों में किसी सारवान् भेद के उत्पन्न होने पर उनको क्रमबद्ध करना और सुलझाने का प्रयत्न करना।

२. समझौता अधिकारी → औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 4 समझौता अधिकारियों की नियुक्ति का प्रावधान करती है। इस धारा के अनुसार समुचित सरकार सरकारी गजट में विज्ञप्ति करके व्यक्तियों की ऐसी संख्या को जिसे वह उचित समझे समझौता अधिकारी नियुक्त कर सकती है। जिसका काम औद्योगिक विवादों में मध्यस्थता करना तथा समझौते को प्रोत्साहन देना है। उपधारा (२) के अन्तर्गत समझौता अधिकारी निर्धारित क्षेत्र के लिए अथवा किसी निर्धारित क्षेत्र में निर्धारित उद्योगों के लिए अथवा एक या अधिक निर्धारित उद्योगों के लिए और या तो स्थायी रूप से या किसी सीमित काल के लिए नियुक्त किया जा सकता है। यह नियुक्ति स्थायी तौर पर या किसी अथवा सीमित अवधि के लिये भी की जा सकती है। समझौता अधिकारी के क्षेत्राधिकार, शक्तियाँ और अन्य सम्बन्धित मामलों को गजट में प्रकाशित किया जायेगा।

कर्तव्य (Duties) – अधिनियम की धारा 12 में उपबन्धित प्रावधानों के अनुसार समझौता अधिकारी के मुख्य कर्तव्य नियोजक तथा कर्मकार के बीच मतभेदों को दूर करना, उनके पारस्परिक सम्बन्धों को सुधारना तथा उनके सामान्य हितों का स्पष्टीकरण करना है।

UNITED SECULAR SOCIETY

3. समझौता बोर्ड (Board of Conciliation) समझौता बोर्ड की स्थापना भी समुचित सरकार द्वारा की जाती है। समझौता – बोर्ड का कार्य भी आपसी समझौता द्वारा औद्योगिक विवादों का निपटारा करना है। बोर्ड का सभापति कोई स्वतन्त्र व्यक्ति होता है अर्थात जो न तो विवाद से सम्बन्धित होता है और न ही ऐसे विवाद से सम्बन्धित उद्योग से सम्बन्धित होता है। सभापति के अलावा विवाद के पक्षकारों के प्रतिनिधि समान संख्या में जैसा कि समुचित सरकार उचित समझे बोर्ड सदस्य होते हैं। प्रतिनिधियों की नियुक्ति सम्बन्धित पक्ष के लोगों के अनुमोदन से होती है।

समझौता कार्यवाही की उपयोगिता -> समझौता प्रक्रिया कोई हल न्याय निर्णय नहीं कर सकते हैं। यह केवल विवाद को सुलझाने तथा पक्षकारों के मध्य मध्यस्थता करने का कार्य करते हैं। ये अपने प्रतिवेदन सरकार को भेज देते हैं। यदि पक्षकार सहमत नहीं होते तो विवाद श्रम न्यायालयों को सुपुर्द कर दिया जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि समझौता कार्यवाही का वैधानिक कोई प्रभाव नहीं होता है। तथा वह पक्षकारों पर बन्धनकारी नहीं होता है।

जी० एम० सेक्युरिटी पेपर मिल्स बनाम आर० एस० शर्मा (1986) Lab IC (667)(670) SC के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि समझौता कार्यवाही के दौरान किया गया समझौता औद्योगिक विवाद के दोनों पक्षों पर लागू होगा।

लोक अदालत (Lok Adalat)

न्यायालयीन लम्बी प्रक्रिया के कारण देश के विभिन्न न्यायालयों में लम्बे समय से मामले विचाराधीन है। ये मामले न्याय प्रशासन के लिए चिन्ता का विषय बने है। न्यायालय की लम्बी प्रक्रिया के कारण लोगों का विश्वास न्यायालय पर से कम हुआ है। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए। लोक अदालत का प्रचलन बढ़ा है। लोक अदालत न्यायालय की वह प्रक्रिया है। जो समझौते के आधार पर निर्मित की गई है। अधिनियम की धारा 19 से 22 तक में लोक अदालत सम्बन्धी प्रावधानों को उल्लेखित किया गया है।

लोक अदालत का संगठन (Organization of Lok Adalat)

लीगल सर्विसेज अथॉरिटी एक्ट 1987 की धारा 19 में यह उपबन्ध किया गया है। कि उच्चतम न्यायालय विधिक सेवा समिति राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति जिला विधिक सेवा प्राधिकरण अथवा तालुका विधिक सेवा प्राधिकरण द्वारा ऐसा स्थान और अन्तराल पर लोक अदालतों का आयोजन किया जा सकता है। जहाँ वह ऐसा करना उचित समझे ऐसी लोक अदालतों में सेवारत अथवा सेवा निवृत्त न्यायिक अधिकारी तथा अन्य व्यक्तियों में ऐसे व्यक्ति होंगे जो समय समय पर सम्बन्धित समिति अथवा प्राधिकरण द्वारा विनिर्दिष्ट किये जाये उनकी

UNITED SECULAR SOCIETY

अर्हतायें और शर्तें भी समिति अथवा प्राधिकरण द्वारा सुनिश्चित की जायेगी।

लोक अदालत का क्षेत्राधिकार (Jurisdiction Lok Adalat) लोक अदालतों को उन सभी मामलों को राजीनामों अथवा समझौतों द्वारा निपटाने का अधिकार होता है। जो किसी न्यायालय में विचाराधीन है। अथवा जो विवाद अभी तक न्यायालय में नहीं पहुँचे हैं। एक प्रकार से यह "विवाद पूर्व समझौते" की प्रक्रिया है।

लोक अदालतों द्वारा ऐसे अपराधिक मामलों का निपटारा नहीं किया जा सकता है जो किसी विधि के अधीन राजीनामा योग्य नहीं है।

लोक अदालतों की प्रक्रिया (Procedure of Lok Adalat)

1. लोक अदालत द्वारा मामलों का संज्ञान (Cognizance of Cases by Lok Adalat) – लीगल सर्विसेज अथॉरिटी एक्ट 1987 की धारा 20 में यह उपबन्धित किया गया है कि जहाँ कोई पक्षकार यदि यह चाहे कि उसके मामले का निस्तारण लोक अदालत के माध्यम से हो तो ऐसा पक्षकार उस न्यायालय में इस आशय का आवेदन कर सकेगा कि उसका मामला लोक अदालत में भेजा जाय। जब न्यायालय को यह समाधान हो जाता है कि वह मामले लोक अदालत में निपटाये जाने योग्य है तो वह उसे लोक अदालत को भेजने का निर्देश दे सकेगा लेकिन यहाँ मामले

UNITED SECULAR SOCIETY

के लोक अदालत में भेजने का निर्देश देने से पूर्व विपक्ष को सुनवाई का अवसर प्रदान किया जाना आवश्यक होगा।

यह सारी प्रक्रिया पूर्ण हो जाने पर जब मामला लोक अदालत में आता है तब लोक अदालत में उस मामले की सुनवाई प्रारम्भ की जायेगी दोनों पक्षकारों को सुनवाई का पृथक-पृथक अवसर प्रदान किया जायेगा तथा उनमें समझौता अथवा राजीनामा कराने का प्रयास किया जायेगा।

अधिनियम की धारा 20 की उपधारा (4) के अन्तर्गत यह अपेक्षा की गई है कि मामले का निस्तारण करते समय लोक अदालत के सदस्य "न्याय समता एवं शुद्ध अन्तःकरण" से कार्य करेंगे तथा नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का पालन करेंगे।

२. लोक अदालत का एवार्ड-(Award of Lok Adalat) यदि मामलों के पक्षकारों के बीच राजीनामा हो जाता है, तो अधिनियम की धारा (21) के अन्तर्गत लोक अदालत का आदेश सिविल न्यायालय की डिक्री अथवा अन्य सक्षम न्यायालय के आदेश का प्रभाव रखेगा, और सभी पक्षकार उस आदेश अथवा डिक्री से आबद्ध होंगे।

पंजाब नेशनल बैंक बनाम लक्ष्मीचंद राय, ए आई आर 2000 म. प्र. 301 के मामले में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 के प्रावधानों के अन्तर्गत लोक अदालत द्वारा पारित

UNITED SECULAR SOCIETY

निर्णय व डिक्री धारा 21(2) के अन्तर्गत होगी और उसके विरुद्ध कोई अपील नहीं की जा सकेगी।

लोक अदालत की शक्तियाँ (Powers of ~~Lok~~ the Lok Adalat)

धारा 20 व 21 के प्रयोजनार्थ लोक अदालतों को सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के अन्तर्गत एक "सिविल न्यायालय" माना गया है। और इन्हें निम्नलिखित के सम्बन्ध में सिविल न्यायालय की शक्तियाँ प्रदान की गई हैं—

1. साक्षियों को समन करना एवं उनका शपथ पर परीक्षण करना।
2. दस्तावेजों का प्रकटीकरण एवं प्रस्तुतीकरण
3. शपथपत्रों पर साक्ष्य का ग्रहण
4. लोक अभिलेख मंगवाया जाना आदि

यहाँ पर भी उल्लेखनीय है कि लोक अदालतों की कार्यवाहियों को भारतीय दण्ड संहिता 1860 की धारा 193, धारा 219 एवं 228 के अन्तर्गत न्यायिक कार्यवाहियाँ माना गया है और लोक अदालतों को दण्ड प्रक्रिया की ~~धारा~~ संहिता 1973 की धारा 195 एवं अध्याय 26 के अन्तर्गत "सिविल न्यायालय" का दर्जा दिया गया है।

23/07/2016

Session 2015-16.

UNITED SECULAR SOCIETY